Sanskritik aur Samajik Anusandhan
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852
Received: 26-11-2025, Accepted: 21-01-2026, Published: 05-02-2026
Volume 7, Issue 1, 2026, Page No. 5-10

बौद्ध दर्शन के विभिन्न निकाय: एक अध्ययन

मुनीम सिंह
शोधार्थी, संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा, भारत

सारांश
बौद्ध धम्म के प्रवर्तक तथागत बुद्ध है। इनका जन्म ईसा की छठी शताब्दी पूर्व हुआ था। तथागत बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् बौद्ध संघ भिक्षुओं के विभिन्न समूहों में या विचारधाराओं में बट गया जिन्हें निकाय कहा गया। सम्राट अशोक के काल में बौद्ध सम्प्रदाय अष्टादश निकाय के नाम से बौद्ध ग्रन्थों में प्रसिद्ध है। बौद्ध धम्म में निकाय शब्द का प्रयोग एक बड़े ग्रन्थ समूह या बौद्ध धम्म की भिन्न–भिन्न परम्पराओं दोनों के लिए किया जाता है जो मुख्य रूप से 'समूह' या 'संग्रह' अर्थ से जुड़ा है। यह निकाय शब्द मूल रूप से त्रिपिटक का एक भाग 'सुत्तपिटक' के पाँच प्रमुख संग्रहों दीघ निकाय, मज्झिम निकाय, संयुक्त निकाय, अंगुत्तर निकाय तथा खुद्दक निकाय के लिए प्रयोग किया जाता है। निकाय शब्द का प्रयोग बौद्ध धम्म में विभिन्न मठों या सम्प्रदायों के लिए भी प्रयोग किया जाता है। इन निकायों का अपने–अपने क्षेत्रों में प्रभाव था। प्रत्येक निकाय का अपना एक अलग सिद्धान्त था। उभरते समय के साथ–साथ महायान सम्प्रदाय से अनेक नवीन तन्त्र निकायों ने जन्म लिया। इनके अनुसार बुद्धत्व व निर्वाण को सरलता व शीघ्रता से प्राप्त किया जा सकता है। तन्त्र–मन्त्र के प्रवेश ने बौद्ध धम्म में अवतारवाद व अडम्बरों ने जन्म लिया जो बाद में बौद्ध धम्म के पतन का कारण बना। महायान सम्प्रदाय अनेक निकायों में विभाजित होने के कारण भी उसका मुख्य सिद्धान्त शून्यता या अद्वैत ही रहा। महायान बौद्ध सम्प्रदाय में सृष्टि की शून्यता पर जोर दिया गया है।

मूल शब्दः बौद्ध धम्म, महायान, निकाय

परिचय
'दर्शन' शब्द 'दृश' धातु से बना है जिसका अर्थ है– जिसके द्वारा देखा जाए। दर्शन की व्युत्पत्ति– लक्ष्य अर्थ है ''दृश्यते अनेन इति दर्शनम''।[1] अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाए वह दर्शन है। यहाँ दर्शन का अभिप्राय सामान्य रूप से देखना नहीं है बल्कि इन्द्रिय से परे देखने से होता है। दर्शन का सीधा अर्थ जीवन और जगत् के गूढ़ रहस्यों का वर्णन करना दर्शन शास्त्र है। भारतीय चिन्तन के अन्तर्गत अनेक दर्शनों का अपना–अपना स्थान है। चिन्तन की इस लम्बी यात्रा में बौद्ध दर्शन का भी विशेष महत्व रहा है।
बौद्ध दर्शन के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध माने जाते हैं। महात्मा बुद्ध का जन्म ईसा की छठी शताब्दी पूर्व हुआ था। बुद्ध के जीवन को रोगग्रस्त, एक वृद्ध, मृतक तथा संन्यासी इन चार घटनाओं ने परिवर्तित कर दिया। इन घटनाओं के पश्चात् महात्मा बुद्ध ने गृह त्याग तथा संन्यास को अपनाया। बुद्ध के उपदेशों के फलस्वरूप बौद्ध धर्म एवं बौद्ध दर्शन का विकास हुआ। बौद्ध धर्म सर्वप्रथम भारत भूमि पर फैला।

बौद्ध निकाय (सम्प्रदाय)
तथागत बुद्ध के समय के बाद बौद्ध संघ भिक्षुओं के विभिन्न समूहों या विचारधाराओं को निकाय कहा गया। निकाय शब्द का प्रयोग बौद्ध धम्म में ग्रन्थों के एक बड़े संग्रह और शुरु आती अलग–अलग बौद्ध परम्पराओं दोनों के लिए किया जाता था, जो 'संग्रह' या 'समूह' मूल अर्थ से जुड़ा है। यह मूल रूप से त्रिपिटक का एक भाग 'सुत्तपिटक' के पाँच प्रमुख संग्रहों दीर्घ, निकाय, मज्झिम निकाय, संयुक्त निकाय, अंगुत्तर निकाय व खुद्दक निकाय के लिए प्रयोग होता है। यह शब्द प्रारम्भिक बौद्ध धम्म के विभिन्न मठों या मठवासी सम्प्रदायों के लिए प्रयोग होता था। जो बाद में दो समूहों में बंट गए–

1. बौद्ध ग्रन्थों का संग्रह
2. बौद्ध सम्प्रदाय

बौद्ध निकायों की उत्पत्ति एवं विकास
अशोककालीन बौद्ध सम्प्रदाय अष्टादश निकाय के नाम से बौद्ध ग्रन्थों में प्रसिद्ध है। निकाय अर्थ है– सम्प्रदाय। इन निकायों का जम्बुद्वीप (भारत) के भिन्न–भिन्न प्रान्तों में अपना–अपना आधिपत्य था। अनेक शताब्दियों तक इनकी प्रभुता बनी रही। इन निकायों के अलग–अलग सिद्धान्त थे जो कालान्तर में विलुप्त हो गए। परन्तु उनका उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में ही नहीं बल्कि ब्राह्मण ग्रन्थों में भी पाया जाता है। मोग्गलिपुत्त तिस्स ने इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना कर प्राचीन मतों के रहस्य तथा स्वरूप का परिचय देने का महान कार्य किया। आचार्य वसुमित्र ने 'अष्टादश निकाय शास्त्र' की रचना कर इन निकायों के सिद्धान्तों का विशद वर्णन किया है।[2]
इन अष्टादश निकायों की उत्पत्ति अशोककाल से पहले हो चुकी थी। परन्तु इसके पश्चात् भी इस साम्प्रदायिक मतभेद का प्रवाह नहीं रुका। बल्कि बौद्ध धर्म के विपुल प्रसार के साथ–साथ विभिन्न सिद्धान्तों की कल्पना के कारण नवीन सम्प्रदायों की उत्पत्ति तथा पुष्टि होती ही रही। उदाहरणार्थ चैत्यवादी सम्प्रदाय से आन्ध्रभृत्य राजाओं के राज्य में विस्तार पाने वाले 'अन्धक' सम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई। आन्ध्रभृत्यों की राजधानी धान्यकटक इस सम्प्रदाय का केन्द्र स्थल था। इस 'अन्धक' सम्प्रदाय से ई०पू० प्रथम शताब्दी में चार अन्य सम्प्रदायों का जन्म हुआ– पूर्वशैलीय सम्प्रदाय, अपरशैलीय सम्प्रदाय, राजगिरिक सम्प्रदाय तथा सिद्धार्थक सम्प्रदाय। धान्यकटक का प्रधान स्तूप ही महाचैत्य के नाम से प्रसिद्ध था। इसी कारण वहाँ का सम्प्रदाय 'चैत्यवादी' कहलाया।
'राजगिरिक' तथा 'सिद्धार्थक' नामकरण से पता नहीं चलता, परन्तु 'पूर्वशैलीय' तथा 'अपरशैलीय' सम्प्रदाय धान्यकटक के पूर्व तथा पश्चिम में होने वाले दो पर्वतों के ऊपर स्थित विहारों के कारण इन नामों से अभिहित हुए है। कथावत्थु में इनके ग्यारह सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है। जिनमें से आठ इनके तथा सिद्धार्थकों के एक समान है। सिद्धार्थक सम्प्रदाय के नामकरण का पता नहीं चलता परन्तु इनके सिद्धान्तों की समानता बतलाती है कि या तो एक दूसरे से निकले है या दोनों का उद्गम स्थल एक ही था। यह चारों अन्धक निकाय आन्ध्रसम्राटों के समय में बहुत उन्नत दशा में थे। आन्ध्र राजा तथा उनकी रानियाँ बौद्धधर्म में विशेष अनुराग रखती थी। 'अन्धक निकायों' का परिनिष्ठित विकास रूप 'महायान' है।[3]

बौद्ध दर्शन के प्रमुख संप्रदाय

बौद्ध दर्शन में मुख्यतः दो सम्प्रदाय है– 'हीनयान तथा महायान।[4] हीनयान बौद्ध दर्शन का प्राचीनतम रूप है तथा महायान उसका विकसित रूप है। वर्तमान में महायान बौद्ध सम्प्रदाय सम्पूर्ण विश्व में फैला हुआ है।

हीनयान

हीनयान सम्प्रदाय महात्मा बुद्ध के उपदेशों पर आधारित है। पालि साहित्य इस सम्प्रदाय का प्रमुख आधार रहा है। जिसमें महात्मा बुद्ध की मूल शिक्षाएं संग्रहित है। यह सम्प्रदाय प्राचीन बौद्ध दर्शन की परम्परा को मानता है। इसी कारण हीनयान को प्राचीन एवं मौलिक धर्म माना गया है। हीनयान के अनुसार जीवन का चरम लक्ष्य अर्हत होना या निर्वाण प्राप्त करना है। ईश्वर का स्थान हीनयान सम्प्रदाय मे 'कम्म' तथा 'धम्म' को दिया गया है। हीनयान संप्रदाय के लोग परिवर्तन अथवा सुधार के विरोधी थे। यह बौद्ध धर्म के प्राचीन आदर्शों को ज्यों का त्यों बनाए रखना चाहते थे। हीनयान संप्रदाय के सभी ग्रन्थ पालि भाषा में लिखे गए हैं। हीनयान बुद्ध की पूजा भगवान् के रूप में न करके बुद्ध को केवल महापुरुष मानते थे। हीनयान की साधना अत्यंत कठोर थी तथा वे भिक्षु जीवन के पक्षधर थे। हीनयान संप्रदाय श्रीलंका, बर्मा, जावा आदि देशों में फैला हुआ है।

महायान

महायान शब्द का वास्तविक अर्थ इसके दो खण्डों महा+यान से स्पष्ट होता है 'यान' का अर्थ मार्ग तथा 'महा' का श्रेष्ठ बड़ा या प्रशस्त अर्थ समझा जाता है। महायान संप्रदाय को 'सहजयान' भी कहा जाता है। महायान संप्रदाय की सरलता एवं व्यवहारिकता के कारण ही यह विश्व धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। महायान संप्रदाय में स्वयं की मुक्ति की अपेक्षा संसार के सभी जीवों की मुक्ति पर अधिक बल दिया गया है। महायान का उद्देश्य संसार के सभी जीवों के समग्र दुःखों का नाश कराकर उन्हें निर्वाण की प्राप्ति करवाना है।

महायान में आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। महायान का मानना है कि यदि आत्मा का अस्तित्व नहीं माना जाए तो मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है? मुक्ति की सार्थकता के लिए आत्मा में विश्वास आवश्यक है।[5]

बौद्ध दर्शन के विभिन्न निकाय (सम्प्रदाय)

1. माध्यमिक निकाय

माध्यमिक का प्रवर्तक नागार्जुन जी को माना जाता है। शून्यवाद का साधारण अर्थ लोग समझते हैं कि समस्त संसार शून्यतम है। 'शून्यं शून्यमित्यपि भावनीयम्'[6] ''सभी कुछ शून्य है, शून्य है'' यह भावना करनी चाहिए। इसे सर्ववैभाशिकवाद भी कहा गया है। शून्यवाद का अर्थ वर्णनातीत माना जाता है। इसे सापेक्षवाद या मध्यम मार्ग भी कहा जाता है। शून्यवाद मत के अनुसार हम संसार के विभिन्न विषयों को सत्य नहीं कह सकते, क्योंकि प्रत्येक वस्तु दूसरे पर निर्भर रहती है। शून्य को ही परमतत्त्व मानने के कारण माध्यमिक संप्रदाय के दार्शनिक इस सिद्धांत को शून्यवाद मानते हैं।

शून्यवादियों द्वारा सब पदार्थों की सत्ता है (सर्व सत्यत्व) आदि भ्रम को हटाकर ''सर्व शून्यम् शून्यम्'' सब कुछ शून्य है यह सिद्ध किया है। यह शून्यवाद शंकराचार्य के मत से मिलता जुलता है। शंकराचार्य ने भी माया को चारों कोटियों से परे बताया है। उन्होंने माया को सत्, असत्, सदसत् तथा न सत् या असत् इन चारों से परे अनिर्वचनीय माना है।[7] शून्यवादियों ने समस्त संसार को शून्य माना है उसी प्रकार से शंकराचार्य भी जगत के समस्त व्यवहार स्वप्न की तरह मिथ्या मानते हैं।[8]

2. योगाचार (विज्ञानवाद)

विज्ञानवाद के प्रवर्तक असंग तथा वसुबंधु हैं। विज्ञानवाद की उत्पत्ति माध्यमिकों के प्रतिवाद स्वरुप हुई है। शून्यवादी जगत् के सभी पदार्थों को शून्य मानते हैं। इसी के प्रतिवाद में इस सम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई है। विज्ञानवाद का मानना है कि जिस बुद्धि के द्वारा जगत् के पदार्थ सत्य प्रतीत हो रहे हैं, कम से कम उस बुद्धि को तो सत्य मानना चाहिए।[9] विज्ञान अर्थात् बुद्धि की सत्ता को यदि नहीं माना जाएगा तब सभी विचार असिद्ध हो जाएंगे। विचार की संभावना के लिए चित्त को मानना आवश्यक है। हमारा समस्त बाह्य ज्ञान निस्सार और निस्स्वभाव है, स्वपनवत् है। कोई चीज बाह्य नहीं है। सब कुछ बुद्धि की काल्पनिक रचना है।[10] स्वयंवेदनं तावदङ्गीकार्यम् स्वयं वेदन को स्वीकार करना चाहिए।

नान्योऽनुभाव्यो बुद्धयाक्ति तस्या नानुभवोऽपरः।
ग्राह्यग्राहकवैधुर्यात्स्वयं सैव प्रकाशते।। इति।। कारिका 14

बुद्धि का स्वयं से अतिरिक्त दूसरा कोई ग्राह्य नहीं है तथा बुद्धि को ग्रहण करने वाला भी बुद्धि के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है। ग्राह्य तथा ग्राहक न होने से बुद्धि स्वयं ही प्रकाशित होती है। उसी प्रकार से अद्वैत वेदान्त में आत्मा को ज्ञानरूप ही माना गया है इसलिए जिससे जिसको जानते हैं वे दोनों एक ही है। आत्मा से जिन नीलादि पदार्थों का ज्ञान होता है वे सभी पदार्थ ज्ञान–रूप ही है।[11]

विज्ञानवाद में विज्ञान दो प्रकार का माना गया है– आलय विज्ञान तथा प्रवृति विज्ञान। आलय विज्ञान समस्त ज्ञान का भण्डार (आलय) है वह समुद्र के समान है तथा विषय पवन के समान और प्रवृति विज्ञान तरंग है। प्रवृति विज्ञान सात प्रकार का है– चक्षुर्विज्ञान, श्रोत्रविज्ञान, जिह्वाविज्ञान, प्राणविज्ञान, कायविज्ञान, मनोविज्ञान, क्लिष्टमनोविज्ञान।[12]

3. सौत्रान्तिक (बाह्यार्थानुभेयवाद)

कुमार लाट को बाह्यार्थानुमेयवाद का प्रवर्तक माना जाता है। बाह्यार्थानुमेयवादी (सौत्रान्तिक) बाह्य पदार्थ तथा आन्तरिक विज्ञान दोनों की सत्ता स्वीकार करते हैं। लेकिन बाह्य पदार्थों का ज्ञान प्रत्यक्ष के द्वारा नहीं हो सकता। उनके ज्ञान के लिए अनुमान की आवश्यकता है। क्योंकि सभी पदार्थ क्षणिक है, जब तक इन्द्रियों का बाह्य पदार्थ से सम्बन्ध होकर उसका ज्ञान प्राप्त होता है तब तक तो वह पदार्थ अतीत हो चुका होता है। प्रत्यक्ष होते ही पदार्थों का चित्र चित्त पर खींच जाता है। इसी चित्र से बाह्य पदार्थों की सत्ता का अनुमान किया जाता है। यही बाह्यार्थानुमेयता का सिद्धान्त कहा जाता है।[13]

अर्थेन घटयत्येनां न हि मुक्त्वार्थरुपताम्।
तस्मात्प्रमेयाधिगतेः प्रमाणं मेयरुपता।। इति।।[14] कारिका 22

इस ज्ञेय (जानने योग्य वस्तु) के आकार को बिना छोड़े ही ज्ञान ज्ञेय से जुड़ता है। अतः ज्ञान का विषय रूप होना ही विषय के ज्ञान का प्रमाण है।

4. वैभाषिक (बाह्यार्थप्रत्यक्षवादी)

इनका मानना है ''सर्वं क्षणिकं क्षणिकम्'' सब कुछ क्षणिक है। समस्त बाह्यपदार्थ प्रत्यक्ष तथा क्षणिक हैं। सौत्रान्तिकों ने बाह्यपदार्थ की सत्ता को चित्तसापेक्ष माना था लेकिन बाह्यार्थप्रत्यक्षवादी बाह्यपदार्थ को चित्तनिरपेक्ष मानते हैं। इनके अनुसार बाह्य पदार्थों की सत्ता स्वतंत्र है। तथा चित्त की भी सत्ता स्वतंत्र है। यदि कोई वस्तु बाहर प्रत्यक्ष नहीं है तो फिर केवल

चित्त के ज्ञान से उसका अनुमान भी कैसे हो सकता है। अतः बाह्य वस्तुओं का ज्ञान प्रत्यक्ष से होता है।[15]
बाह्यार्थप्रत्यक्षवाद को सर्वास्तिवाद भी कहा जाता है। सर्वास्तिवादियों का मानना है कि अतीत और अनागत धर्म द्रव्य–सत् है, क्योंकि ये त्रैकालिक (त्रैयध्विक धर्मों के अस्तित्व को मानते हैं। इसलिए इन्हें सर्वास्तिवादी कहते हैं।

तदस्तिवादात् सर्वास्तिवादी मतः।

5. प्रतीत्यसमुत्पादवाद (क्षणिकवाद)

क्षणिकवाद का मत है कि ''जो सत् है वह क्षणिक है'' यत्सत्तत्क्षणिकं।[16] इस व्याप्ति के द्वारा सभी पदार्थों के क्षणिक होने का अनुमान किया जाता है। क्षणिकवाद में क्रमाक्रम की सत् के साथ व्याप्ति है, क्रमाक्रम व्यापक है और सत् व्याप्य है। जहाँ पर क्रमाक्रम नहीं है वहाँ सत् (सत्ता) भी नहीं है।[17] क्षणिकवाद में सत्ता (सत्) को मानने के लिए अर्थ क्रियाकारित्व का होना बहुत आवश्यक है। जो सत् पदार्थ माना गया है वह अर्थ क्रियाकरित्व अवश्य होता है। अर्थ क्रियाकारित्व का तात्पर्य है कार्य को करने की क्षमता रखना। जितने भी सत् पदार्थ है, वे सभी अर्थ क्रियाकारी हैं। जैसे– बीज क्षणिक है, क्योंकि वह अर्थ क्रियाकारित्व है अर्थात् वह अंकुर उत्पन्न करने में समर्थ है।

तच्चार्थ क्रियाकारित्वं क्रमाक्रमाभ्यां व्याप्तम्[18]

यह अर्थक्रियाकारित्व क्रम तथा अक्रम से व्याप्त है।
प्रतीत्यसमुत्पाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु कारणानुसार होती है। कारण के नष्ट होने पर वस्तु भी नष्ट हो जाती है। प्रतीत्यसमुत्पादस्य हेतू पनिबन्धनो प्रत्येक वस्तु नाश्वान है।
प्रतीत्य समुत्पाद का सिद्धान्त अनित्यवाद (क्षणिकवाद) से अवतरित हुआ है इसके अनुसार संसार की सभी वस्तुएं परिवर्तनशील है। परिवर्तन सृष्टि का नियम है। गौतम बुद्ध ने अनित्यवाद की व्याख्या करते हुए कहा है– ''जो वृद्ध हो सकता है वह पूर्णतः वृद्ध होगा।
प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धान्त अनित्यवाद (क्षणिकवाद) से अवतरित हुआ है इसके अनुसार संसार की सभी वस्तुएं परिवर्तनशील है। परिवर्तन सृष्टि का नियम है। गौतम बुद्ध ने अनित्यवाद की व्याख्या करते हुए कहा है– ''जो वृद्ध हो सकता है वह पूर्णतः वृद्ध होगा। जो मृत्यु के अधीन है उसकी मृत्यु अवश्य होगी। जो नाशवान है उसका नाश अवश्य होगा।[19] बुद्ध द्वारा प्रतिपादित अनित्यवाद के सिद्धान्त को उनके अनुयायियों ने क्षणिकवाद के रूप में रूपांतरित किया। क्षणिकवाद अनित्यवाद का ही विकसित रूप है। क्षणिकवाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व क्षणमात्र होता है। क्षणिकवाद के समर्थकों ने एक महत्वपूर्ण तर्क दिया है– अर्थक्रियाकारित्व अर्थात किसी कार्य को उत्पन्न करने की शक्ति। इस तर्क के अनुसार किसी वस्तु की सत्ता को तब तक माना जा सकता है जब तक उसमें कार्य करने का सामर्थ्य मौजूद है।

6. अनात्मवाद

भारत के अन्य दर्शनों ने आत्मा को नित्य माना है, स्थायी माना है। अन्य दर्शनों के अनुसार आत्मा का अस्तित्व मृत्यु के उपरान्त एवं मृत्यु के पूर्व भी रहता है। आत्मा पुनर्जन्म के विचारों को जीवित रखती है। इससे यह सिद्ध होता है कि अगर आत्मा का अर्थ स्थायी तत्त्व में विश्वास करना है तो बुद्ध का मत पूरी तरह से अनात्मवादी कहा जा सकता है। बुद्ध के अनुसार विश्व में न कोई आत्मा है और न ही आत्मा की तरह कोई अन्य वस्तु। पाँच ज्ञानेन्द्रियों के आधार स्वरुप मन और मन की वेदनाएँ, वे सब आत्मा के समान किसी चीज से बिल्कुल शून्य है।[20]
आत्मा केवल अस्थायी शरीर और मन का संकलन मात्र है। उनके अनुसार आत्मा केवल पांच स्कन्धों की समष्टि का नाम है और यह पांच स्कन्ध है रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान। भगवान् बुद्ध पक्के अनात्मवादी थे। अपने उपदेशों में उन्होंने आत्मवाद के अनुयायियों की कड़ी आलोचना की है। महात्मा बुद्ध ने अपने शिष्यों को आत्मा के बारे में कहा– हे भिक्षुओं, यह आत्मा की भावना बिल्कुल बाल धर्म है 'अयं भिक्खवे, केवलो परिपुरो बाल धम्मो मज्झिमनिकाय 1/1/2 बुद्ध के इस उपदेश से आत्मभाव के प्रति उनकी अवहेलना स्पष्ट है। वे नित्य, ध्रुव आत्मा के अस्तित्व को मानने से पराङ्मुख है।[21]

7. अनीश्वरवाद

महात्मा बुद्ध प्रथम कोटि के अनीश्वरवादी थे। उनके अनुसार ईश्वर की सत्ता मानने के लिए हमारे पास कोई भी उपयुक्त तर्क नहीं है। अपने उपदेशों में उन्होंने अपनी अनीश्वरवादी भावना को स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त किया है जिसे पढ़कर प्रतीत होता है कि वे अनजाने और अनसुने ईश्वर के भरोसे अपने अनुयायियों को छोड़कर उन्हें अर्कमण्य तथा अनात्मविश्वासी बनाना नहीं चाहते थे। पाथिकसुत्त (दीर्घ निकाय 3/1) में बुद्ध ने ईश्वर के कर्तृत्व का बड़ा उपहास किया है।[22]
बौद्धो ने समस्त कार्यकारणात्मक जगत् की प्रतीत्य–समुत्पन्न माना है। हेतु और प्रत्ययों की अपेक्षा करके ही सभी धर्मों की धर्मता स्थित है। इसलिए इस सिद्धान्त में ईश्वर, ब्रह्मा आदि कल्पित कारकों का प्रतिषेध किया गया है।[23]
बौद्ध द्वारा ईश्वर को सृष्टि का स्रष्टा एवं नियामक मानना हास्यास्पद है। यदि ईश्वर जगत का नियंता है तो फिर सृष्टि में विनाश एवं परिवर्तन का अभाव होना चाहिए परन्तु ऐसा नहीं है। संसार दुःख परिवर्तन, अशुभ के अधीन दिखाई देता है यदि सृष्टि प्रयोजन के अनुसार है तो ईश्वर अपूर्ण दिखाई देता है क्योंकि प्रयोजन किसी न किसी कमी को अभिव्यक्त करता है, और अगर सृष्टि का निर्माण किसी प्रयोजन से नहीं हुआ तो बुद्ध के अनुसार ईश्वर को पागल कह सकते हैं। उन्होंने अपने शिष्यों को ईश्वर पर निर्भर न रहने का आदेश दिया और कहा– ''आत्म–दीपो भव'' ।[24]

8. अपोहवाद

अपोहवाद बौद्धों का मत है। वे सामान्य न मानकर अपोह स्वीकार हैं। अपोह का अर्थ है– अतद्भिन्न। घट घट भिन्न सभी पदार्थों से भिन्न है।[25] अपोहवाद मत के जनक बौद्ध न्याय के प्रतिपादक दिङ्नाग माने जाते हैं। उन्होंने अपोहवाद की संकल्पना अपने ग्रन्थ 'प्रमाणसमुच्चय' के पाँचवे परिच्छेद में की है। अपोह का अर्थ है वस्तु से भिन्न का निषेध। अपोह से अन्य की व्यावृत्ति करके ही अर्थज्ञान होता है। जैसे, 'गाय' शब्द से गाय पशु का ज्ञान 'अगो (जो गाय नहीं है, जैसे अश्वादि) के निषेध से होता है। अतः बौद्धों के मत में शब्द का अर्थ निषेधात्मक है। शब्द वस्तु की सत्ता का नहीं, प्रत्युत तद्भिन्न से उसकी व्यावृत्ति का ज्ञान कराते हैं। बौद्धों का यही सिद्धान्त अपोहवाद कहलाता है। अनित्यवाद की स्थापना में बौद्धों के समक्ष सबसे बड़ी समस्या आकृति 'जाति' या सामान्य का सिद्धान्त था। बौद्ध यदि व्यक्ति के अतिरिक्त जाति जैसी किसी सत्ता की स्वीकार करते हैं तो अनित्यवाद की स्थापना नहीं हो सकती। अतः बौद्धों ने जाति का खण्डन किया। जनसामान्य अनेक वस्तुओं में एकता का जो दर्शन करता है उसका समाधान किए बिना जाति का खण्डन भी संभव नहीं हुआ। फलस्वरूप बौद्धों ने एक ऐसे सिद्धान्त की स्थापना की जिससे उनके मतानुसार 'जाति' का निरसन हो और अनेक वस्तुओं में एकता का भी विश्लेषण हो जाता है। इसी को बौद्ध अपोह कहते हैं।[26]

9. वज्रयान

मानव सभ्यता के उद्य के साथ–साथ ही तन्त्र–मन्त्र का उद्य होता है। तन्त्र–मन्त्र उतने ही प्राचीन है जितनी मानव संस्कृति। मनुष्य सदा से ही सिद्धी पाने के लिए, किसी सरल मार्ग की खोज में लगा रहता है। मन्त्र–तन्त्र का प्रयोग ऐसा ही सरल मार्ग है। शिक्षित लोगों में भी तन्त्र के विषय में अनेक धारणाएं फैली हुई है।

वज्रयान का उद्गम कहाँ से हुआ? यह एतिहासिकों के लिए विचारणीय विषय है। महायान के विकास का नाम 'मन्त्रयान' है जिसका अग्रिम विकास 'वज्रयान' है। सौम्य अवस्था का नाम 'मंत्रयान' है, उग्र अवस्था का नाम 'वज्रयान' है।[27]

बौद्ध मत में पारमितानय के समान मंत्र–नय के भी प्रवर्तक बुद्ध ही है। मंत्रमार्ग में अवान्तर भेद–वज्रयान, कालचक्रयान तथा सहजयान आविर्भूत हुए। वज्रयान की साधना में मंत्र का प्राधान्य रहता है। इसी कारण कभी–कभी वज्रयान को मंत्रयान भी कहते है। सहजयान में मंत्र के ऊपर जोर नहीं दिया गया है। परन्तु वज्रयान तथा कालचक्रयान की योग साधना में मंत्र का ही प्राधान्य माना जाता है। प्रसिद्धि है कि गौतम बुद्ध के पूर्ववर्ती बुद्ध दीपंकर इस मार्ग के आदि उपदेष्टा थे किन्तु कालक्रम से वज्रयान लुप्त हो गया।[28]

उत्तर काल में वज्रयान वज्रयोग के रूप में प्रकट हुआ। उसके प्रवर्तक राजा सुचन्द्र थे। यह एक विशाल राज्य के स्वामी थे। इनकी राजधानी संभल–नगरी थी। यह सीता नदी के तट पर थी। कालतंत्र नामक ग्रन्थ में इसका विवरण मिलता है। मंत्र–यान का लक्ष्य वज्रयोग–सिद्धि है। जब तक साधक का आधार या क्षेत्र योग्य नहीं होता तब तक इसका साधन नहीं किया जा सकता।[29]

10. कालचक्रयान

कालचक्रयान बौद्धों से ही जुड़ा हुआ एक सिद्धांत है। इसकी उत्पत्ति वज्रयान से मानी जाती है। कालचक्र अद्वय, परमतत्त्व का ही दूसरा नाम है। काल का अर्थ है– शून्यता की मूर्ति। चक्रपद का अर्थ संवृतिरूप शून्यता है।

अन्य प्रकार से कहा गया है–

काकारात् कारणे शान्ते लकाराल्लयोऽत्र वै।
चकाराच्चल चित्तस्य क्रकारात् क्रमबन्धनैः।।[30]

अर्थात् जाग्रत अवस्था के क्षीण होने के कारण बोधि–चित्त–काय शान्त या विकल्प हीन होता है, यही 'का' से अभिप्राय है। काय बिन्दु के निरोध से ललाट में निर्माण काय नाम का बुद्ध–काय प्रकट होता है। स्वप्नावस्था का जो क्षय होता है यही प्राण का लय है। इस अवस्था में वाग्–बिन्दु का निरोध होता है। इससे कण्ठ में संभोग–काय का उद्य होता है, जो 'ल' से अभिप्रेत है। सुषुप्ति के क्षय होने पर चित्त–बिन्दु का निरोध होता है उस समय हृदय में धर्मकाय का उदय होता है। जाग्रत् तथा स्वप्नावस्था में चित्त शब्दादि विषयों में विचरण करता है। इसीलिए चंचल रहता है और तम से अभिभूत रहता है। इनके अवसारण से हृदय में चित्त निरुद्ध हो जाता है। यही 'च' का अभिप्राय है।

इसके बाद तुरीयावस्था का भी क्षय होता है। तब कायादि सब बिन्दु सहज सुख के द्वारा अच्युत हो जाते हैं। उसी समय तुरीयावस्था का नाश होता है। स्वरगत ज्ञानबिन्दु के निरोध से नाभि में सहज–काय का आविर्भाव होता है। यही 'क्र' का अभिप्राय है। अतः कालचक्र चार बुद्ध कार्यों का समाहार है। यह प्रज्ञा तथा उपाय का सामरस्य है। एकाधार में यही ज्ञान है, और यही ज्ञेय भी है। यहाँ यान का अर्थ है– अक्षर सुख का बोध। इससे सब आवरणों का क्षय (नाश) होता है। ज्ञेय से अभिप्राय है, अनन्त भावमय त्रैधातुक जगत्–चक्र, अर्थात समग्र विश्व। प्रज्ञा शून्यात्मक है और उपाय करुणात्मक है। प्रज्ञा शून्याकार है, परन्तु करुणा सर्वाकार है। दोनों का एकत्व ही कालचक्र है। बुद्ध और चक्र अभिन्न है। यह कालचक्र ही आदि बुद्ध है।[31]

11. थेरवाद (स्थविरवाद)

पालि भाषा में इसे थेरवाद तथा संस्कृत भाषा में इसे स्थविरवाद कहा जाता है। पालित्रिपिटक और उनकी अट्ठकथाएँ ही शुद्ध थेरवादी परम्परा है। स्थविरवाद के सभी ग्रन्थ पालि में हैं। पिटक, अनुपिटक, भाष्य, अनुभाष्य, प्रकरण, अनुप्रकरण सभी प्रकार के पालि भाषा के सद्धर्म–ग्रन्थ स्थविरवादी परम्परा के है और उनमें आया हुआ धर्म ही वास्तविक स्थविरवाद है।[32]

स्थविरवाद के सम्बन्ध में पहले विस्तारपूर्वक कहा जा चुका है। भगवान ने जो उपदेश पालि में दिए थे और जिनका संकलन एवं संगायन प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय संगीतियों में हुआ था, वही मूल स्थविरवाद था और वह अशोक के काल तक आते–आते हीनयान एवं महायान के रूप में विभक्त होकर 18 भिक्षुनिकायों में विभाजित हो गया था, जिनमें स्थाविरवाद अपने उपनिकायों के साथ बारह की संख्या पूरी करने लगा था।[33]

महायानी भिक्षुओं द्वारा स्थाविरवाद को हीनयान नाम दिया गया। हीनयान शब्द महायानियों द्वारा उन पर बलपूर्वक थोपा गया है। बौद्ध धर्म से जो ये प्रमुख निकाय निकले थे वे विकसित होते गए और प्रत्येक बौद्ध देश में उनका स्वरूप भी किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा तथा आज भी है जैसे लंका, वर्मा आदि देश स्थविरवादी है।[34]

स्थविरवाद निकाय के सिद्धान्त सरल तथा संक्षिप्त है। इसके अनुसार– पापों से दूर रहना, कुशल धर्मों को ग्रहण करना और मन को पवित्र करना ही भगवान बुद्ध का मूल उपदेश है। उपासकों के लिए पंचशील का विधान है। पंचशील कुशल कर्म का आचरण है। पंचशील में हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और सुरा आदि पाप कर्मों का त्याग है। भिक्षुओं के लिए दस धर्म का पालन बतलाया गया है– उपरोक्त हिंसा आदि पाँच और मिथ्या, पिशुन, कठोर वचन संप्रलाप (व्यर्थ वचन) गन्ध आदि का त्याग।[35]

12. लामावाद

तिब्बत का राजधर्म बौद्ध–धर्म है। वहाँ का राजा दलाई लामा धर्म का भी गुरु समझा जाता है। तिब्बत को बौद्ध धर्म चीन से प्राप्त हुआ माना जाता है क्योंकि तिब्बती लोगों ने संस्कृत–ग्रन्थों के चीनी अनुवाद का भाषान्तर अपनी भाषा में किया।[36]

दलाई लामा 'मंगोली' भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है– बुद्धि का सागर। तिब्बत, लद्दाख, भूटान और मंगोलिया के लोग दलाई लामा को 'बोधिसत्व' अथवा भगवान बुद्ध का अवतार मानते हैं। तिब्बत के लोग दलाई लामा को 'जीवित बुद्ध' मानते हैं। उनका मानना है कि दलाई लामा अपने नश्वर शरीर का परित्याग करके पुनः अवतार ग्रहण करते हैं।

'दलाई लामावाद' का उदय चौदहवीं शताब्दी में हुआ। 'तेंजिन–ग्यात्यो' चौदहवें दलाई लामा हैं।[37]

13. लोकोतरवाद सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय को मानने वाले बुद्ध और बोधिसत्व को लोकोत्तर मानते थे। इनके अनुसार बोधिसत्व के आध्यात्मिक विकास के लिए विभिन्न भूमियां भी होती है। लोकोत्तरवादी पारमार्थिक धर्मों की ही सत्ता स्वीकार करते थे, शून्यता को परमार्थ मानते थे।[38]

14. बहुश्रुतीय सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक बहुश्रुतीय आचार्य थे। इस सम्प्रदाय के अनुसार बुद्ध की पाँच स्वर देशना है– अनित्यता, दुःख, शून्यता, अनात्म और निर्वाण। इन्हीं से लोकोत्तर धर्म का ज्ञान होता है। इस सम्प्रदाय से ही आगे चलकर 'प्रज्ञप्तिवाद' का उदय हुआ।[39] बहुश्रुतीय पंथ का उल्लेख अमरावती और नागार्जुनीकोंडा के

शिल्पलेखों से उपलब्ध होता है। यह पंथ महासांघिक सम्प्रदाय से उद्भूत है।[40]

15. वैतुल्यक सम्प्रदाय

इस सम्प्रदायों के आचार्यों ने संघ की एक नई व्याख्या की है। इनके अनुसार संघ का खाना पीना व्यर्थ है, यह आध्यात्मिक है। इसे दान देने का कोई फल नहीं। इनके अनुसार बुद्ध मनुष्य लोक में नहीं रहते। उनका एक निर्मित रूप लोक में उपदेश देकर तुषित लोक में लौट जाता है। तुषित लोक में ही बुद्ध स्थित रहते है।[41]

16. वात्सीपुत्रीय सम्प्रदाय

यह सम्प्रदाय वत्सदेशीय था। इनका केन्द्र कौशाम्बी था। इस सम्प्रदाय का उद्भव महात्मा बुद्ध के निर्वाण के 200 वर्ष पश्चात् हुआ। यह सम्प्रदाय पुद्गल सिद्धान्त को स्वीकार करता है। इनके अनुसार पुद्गल एक स्थिर तत्त्व है। पुद्गल ही परलोक का संक्रमण करता है। पुद्गल न तो स्कन्धों के समान है और न इनसे भिन्न है।[42]

17. सम्मतीय सम्प्रदाय

यह सम्प्रदाय वात्सीपुत्रीय सम्प्रदाय की ही एक शाखा थी। सम्राट हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री सम्मतीय सम्प्रदाय को मानती थी। इस सम्प्रदाय का अधिकांश साहित्य चीनी भाषा में उपलब्ध है। इस सम्प्रदाय में छः पुद्गलों का सिद्धान्त उपलब्ध होता है– स्तोत्रापन्न, कुलंकुल, सकृदागामी, एक वीचिक, अनागामी और अर्हत्। अर्हत् के भी तीन प्रकार माने गए हैं– भद्रयाणीय श्रावक, प्रत्येक बुद्ध और बुद्ध।[43]

सम्मतीय सम्प्रदाय थेरवाद की ही उपशाखा है जो कि सम्राट अशोक से पूर्व में ही मूल शाखा से अलग हो गई थी। हर्षवर्धन के समय में इस सम्प्रदाय की विषेष प्रधानता थी। इसका पता तत्कालीन चीनी यात्रियों के विवरणों से मिलता है।[44]

18. महीषासक सम्प्रदाय

पालि प्रमाणों के आधार पर स्थाविरवादियों से पृथक हुए वण्णीपुत्तकों ने इस पंथ का प्रवर्तन किया। पौराणिक जन इस मार्ग के पहले महीषासक थे जिन्होंने राजगृह की प्रथम संगीति में निर्धारित नियमों को मानने से इन्कार कर दिया था। इस षाखा का विकास श्रीलंका में हुआ। 'जातकट्ठ कथा' के पहले 'लोक में कहा गया है कि उनका निर्माण लेखक ने अपने एक महीषासक मिश्र बुद्धदेव के आग्रह पर किया। महीषासक नौ असंस्कृत धर्म के अनुयायी थे। सर्वास्तिवादियों की षांति महीषासक भी गत, आगत और अन्तराभव में विष्वास करते थे। उनके मत के अनुसार स्कन्ध, आयतन और धातु, बीजों के रूप में विद्यमान रहते हैं।[45]

19. चैत्यक सम्प्रदाय

महादेव नामक एक भिक्षु ने बुद्धनिर्वाण के लगभग दो षतकों बाद इस पंथ का प्रवर्तन किया। यह भिक्षु मथुरा के महादेव से भिन्न था। उसने महासांघिकों के पाँच सिद्धांतों के आधार पर अपना एक नया पंथ प्रचलित किया। एक चैत्ययुक्त पर्वत पर आवास होने के कारण उसके अनुयायी चैत्यक कहलाए, जिसका ऐतिहासिक विवरण अमरावती और नागार्जुनीकोंडा के षिलालेख भी देते हैं।

ये लोग चैत्यों के निर्माण, उनकी अर्चना एवं अलंकरण, बुद्ध–आसक्ति सम्यक् दृष्टि और निर्वाण में विश्वास करते थे। बौद्ध धर्म का यह पहला पंथ था, जिसने बुद्ध और बोधिसत्व को देवी रूप में प्रतिष्ठित कर उसकी लोकप्रियता को बढ़ाया।[46]

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि महात्मा बुद्ध के पश्चात् बौद्ध धर्म एक वटवृक्ष के रूप में उभरा। बौद्ध धर्म प्रारम्भ में दो सम्प्रदायों में हीनयान तथा महायान में विभाजित हुआ। परन्तु समय की गति के साथ महायान सम्प्रदाय विभिन्न भागों में बंटता चला गया। महायान सम्प्रदाय लगभग अठारह निकायों में विभाजित हुआ। यह सम्प्रदाय जम्बूद्वीप के साथ–साथ विभिन्न देशों में भी फला–फूला। समय के साथ इस सम्प्रदाय के भिक्षुओं में विचारों को लेकर आपसी मतभेद शुरू हुए जिनसे विभिन्न अलग–अलग सम्प्रदाय व विचार खड़े हुए। समय के साथ महायान सम्प्रदाय में तन्त्र–मन्त्र ने भी जन्म लिया। इनके अनुसार तन्त्र–मन्त्र के द्वारा बुद्धत्व व निर्वाण को सरलता व शीघ्रता से प्राप्त किया जा सकता है। तन्त्र–मन्त्र के द्वारा बौद्ध धर्म में अनेक अडम्बरों ने प्रवेश कर लिया जिस कारण यह बौद्ध धर्म के पतन का भी कारण रहा। महायान सम्प्रदाय के वज्रयान, कालचक्रयान, गुह्यसमाज, हेवज्रतन्त्र आदि तन्त्र–मन्त्र से सम्बन्धित शाखाएं है। परन्तु महायान सम्प्रदाय विभिन्न निकायों में विभाजित होने के कारण भी उसका मुख्य सिद्धान्त शून्यता व अद्वैत ही रहा। इस सम्प्रदाय का प्रत्येक निकाय शून्यता व अद्वैतता पर आधारित है। महायान सम्प्रदाय द्वारा सृष्टि की शून्यता पर विशेष बल दिया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, पृ० सं० 3
2. उपाध्याय, बलदेव, बौद्धदर्शन मीमांसा, पृ० 83
3. उपाध्याय, बलदेव, बौद्ध दर्शन मीमांसा, पृ० 86
4. बौद्ध धर्म दर्शन, आचार्य नरेन्द्र देव, मोतीलाल वनारसीदास पब्लिशर्स, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1956, पृ० सं० 105
5. भारतीय दर्शन की रूपरेखाः हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, पृ० सं० 139–140
6. सर्वदर्शन संग्रह, मध्वाचार्य, पृ० सं० 39
7. सर्वदर्शन संग्रह, मध्वाचार्य, पृ० सं० 41
8. सर्वदर्शन संग्रह, मध्वाचार्य, पृ० सं० 42
9. बलदेव उपाध्याय, बौद्ध दर्शन मीमांसा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 221001, पृ० सं० 199
10. बलदेव उपाध्याय, बौद्ध दर्शन मीमांसा, शारदा मंदिर, वाराणसी, पृ० सं०
11. सर्वदर्शन संग्रह, मध्वाचार्य, पृ० 45
12. सर्वदर्शन संग्रह, मध्वाचार्य, पृ० 51
13. सर्वदर्शन संग्रह, मध्वाचार्य, पृ० 26
14. सर्वदर्शन संग्रह, मध्वाचार्य, पृ०
15. सर्वदर्शनसंग्रह, मध्वाचार्य, पृ० 26
16. सर्वदर्शनसंग्रह, मध्वाचार्य, पृ० सं० 26
17. सर्वदर्शनसंग्रह, मध्वाचार्य, पृ० सं० 36
18. स०द०स०, मध्वाचार्य, पृ० सं० 26
19. सिन्हा, प्रो० हरेन्द्र प्रसाद भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ० 121
20. सिन्हा, प्रो० हरेन्द्र प्रसाद भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ० 123
21. बलदेव उपाध्याय, बौद्ध दर्शन मीमांसा, पृ० सं० 66–67
22. बलदेव उपाध्याय, बौद्ध दर्शन मीमांसा, पृ० सं० 76
23. देव, आचार्य नरेन्द्र, बौद्ध धर्मदर्शन, पृ० सं० 240
24. सिन्हा, प्रो० हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ० 125
25. सर्वदर्शनसंग्रह, मध्वाचार्य, पृ० सं० 38
26. ज्योति केसरी शोध छात्रा, दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद वि०वि०, इलाहाबाद
27. उपाध्याय, बलदेव, बौद्ध दर्शन मीमांसा, पृ० सं० 319

28. देव, आचार्य नरेन्द्र, बौद्ध धर्म दर्शन, पृ० सं० 28
29. देव, आचार्य नरेन्द्र, बौद्ध धर्म दर्शन, पृ० सं० 29
30. कालचक्रतन्त्रम्, काशीनाथ चौपाने, प्रथम उपक्रम प्रकरणम्, पृ० 40
31. देव, आचार्य नरेन्द्र, बौद्ध धर्म दर्शन, पृ० सं० 40–41
32. श्री वास्तव, श्री नारायण, भारत में बौद्ध निकायों का इतिहास, पृ० सं० 141
33. थेरवादेनसहते होन्ति द्वादसि मेपि च – महावंस 5, 10
34. श्री वास्तव, श्री नारायण, भारत में बौद्ध निकायों का इतिहास, पृ० सं० 142
35. सिंह, डॉ० बद्रीनाथ, बौद्ध धर्म एवं दर्शन, आशा प्रकाशन, सदानन्द बाजार, वाराणसी – 221001, प्रथम संस्करण – 1986, पृ० 47
36. उपाध्याय, आचार्य बलदेव, बौद्ध दर्शन–मीमांसा, पृ० सं० 345
37. कर्दम, जयप्रकाश, बौद्ध धर्म के आधार, तिलक नगर, दिल्ली – 110018, पृ० सं० 125
38. सिंह, डॉ० बद्रीनाथ, बौद्ध धर्म एवं दर्शन, पृ० 49
39. सिंह, डॉ० बद्रीनाथ, बौद्ध धर्म एवं दर्शन, पृ० 49
40. गैरोला, वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० 333
41. सिंह, डॉ० बद्रीनाथ, बौद्ध धर्म एवं दर्शन, पृ० 49
42. वही
43. सिंह, डॉ० बद्रीनाथ, बौद्ध धर्म एवं दर्शन, पृ० 49
44. उपाध्याय, बलदेव, बौद्ध दर्शन मीमांसा, पृ० 90
45. गैरोला, वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० 332
46. गैरोला, वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० 333
47. न्यौपाने, काशीनाथ, कालचक्रतन्त्रम्, प्दकपंद डपदक, वाराणसी, 221001
48. कर्दम, जयप्रकाश, बौद्ध धर्म के आधार स्तंभ, सम्यक प्रकाशन पश्चिमपुरी, नई दिल्ली – 110063
49. सिंह, डॉ० बद्रीनाथ, बौद्ध धर्म एवं दर्शन, आशा प्रकाशन, सदानन्द बाजार, वाराणसी–221001, प्रथम संस्करण, 1986
50. उपाध्याय, बलदेव, बौद्ध दर्शन मीनांसा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी – 221001
51. देव, आचार्य नरेन्द्र, बौद्ध धर्म दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली, 1956
52. उपाध्याय, बलदेव, भारतीय दर्शन, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी – 221001
53. सिन्हा, प्रो० हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास चौक, वाराणसी – 221001
54. श्रीवास्तव, श्री नारायण, भारत में बौद्ध निकायों का इतिहास
55. मध्वाचार्य, सर्वदर्शन संग्रह, भारतीय विद्याभवन प्रकाषन, वाराणसी
56. कौसल्यायन, डॉ० भदत्त आनन्द, महावंस 5, 10, गौत्तम बुक सेंटर, दिल्ली
57. गौरेला, वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी–221001